Pitra Dosh Nivaran Puja Vidhi in Hindi

पितृपक्ष (श्राद्धकाल) पूजा विधि

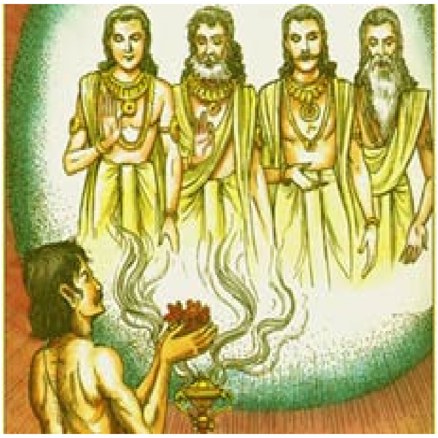

Gurudev Raj Verma

Contact- +91-9897507933, +91-7500292413(WhatsApp No.)

Email- mahakalshakti@gmail.com

For more info visit---

www.scribd.com/mahakalshakti

www.gurudevrajverma.com

पितरों के पूजन एवं उनके प्रति किये जाने वाले कर्त्तव्यों का शास्त्रों में विस्तृत विधान मिलता है। संक्षिप्त एवं प्रमुख कर्त्तव्य, जिनका श्राद्धकर्ता को पितरपक्ष में आवश्यक रूप से पालन करना चाहिये, पितरजनों की कृपा से उनको प्रस्तुत करने का प्रयास कर रहा हूं। सर्वप्रथम पितरपक्ष में श्राद्धकर्म को स्वीकार करने वाले मनुष्य जीवितावस्था में भी अपने माता-पिता एवं वृद्धजनों की सेवा सत्कार्य को स्वीकार करना सीखें। जीते जी जिसने कष्ट सहनकर भी अपने माता-पिता को संतुष्ट नहीं किया, उसके सभी श्राद्धकर्म विफल हो जाते हैं। जो जीवित माता-पिता की भक्ति में नित्य तत्पर रहता है, वही वास्तविक श्राद्धी है। जीवनप्रदाता माता-पिता की वाणी और कर्म से सेवा करना प्रत्येक मनुष्य का धार्मिक कर्त्तव्य है। इनके आगे अपने स्वाभिमान, धन और ऐश्वर्य को बड़ा न समझें। माता-पिता के लिये इनकी हानि करने से भी मनुष्य की सर्व प्रकार से उन्नति होती है। माता, पिता, अग्नि, आत्मा और गुरु- मनुष्य को इन पांच अग्नियों की बड़े यत्न से सेवा करनी चाहिये।

श्रवण कुमार का नाम माता-पिता की सेवा से आज भी अमर है। आयु में छोटे होने पर भी गणेशजी को प्रथम पूज्य देवता की उपाधि माता-पिता को अग्रणीय करने से ही प्राप्त हुई थी। भगवान् राम ने अपने पिता के वचन को पूरा करने के लिये अपने राज्य का भी त्याग कर दिया था। पाण्डवों के वनवास काल में यक्ष ने धर्मराज युद्धिष्ठर से कुछ प्रश्न पूछे थे, उनमें से एक प्रश्न था- पृथ्वी से भी भारी क्या है? आकाश से भी ऊंचा क्या है? वायु से भी तेज चलने वाला क्या है? और तिनकों से भी अधिक संख्या में क्या है? युद्धिष्ठर ने उत्तर दिया- माता भूमि से भी भारी (बढ़कर) है, पिता आकाश से भी ऊंचा है, मन वायु से भी तेज चलने वाला है और चिंता तिनकों से भी बढ़कर है। इसी प्रकार मातृ-पितृ भक्ति का शास्त्रों में कई स्थानों पर वर्णन मिलता है।

अपने मातृ-पितृ के उद्देश्य से श्रद्धापूर्वक किये जाने वाले विशेष कर्म को श्राद्ध शब्द के नाम से जाना जाता है। इसे पितृयज्ञ भी कहते हैं। नरक से जो त्राण करता है, वही सुपुत्र है। मनुष्य से जीवन काल में पाप और पुण्य दोनों कर्म होते हैं। कर्म का कभी विनाश नहीं होता। पुण्य के प्रभाव से स्वर्गलोक तथा पाप के द्वारा नरक की घोर यातनाओं का कष्ट सहन करना पड़ता है। स्वर्ग-नरक भोगने के पश्चात् जीव पुनः अपने कर्मों के

अनुसार चौरासी लाख योनियों में जीवन–मृत्यु के चक्र में फंस जाता है। पुण्यात्मा जीव मनुष्य योनि अथवा देवयोनि को प्राप्त करते हैं और पापात्मा जीव पशु–पक्षी, कीट, पतंग आदि अधोगति को प्राप्त होते हैं। इसलिये पुत्र–पौत्रादि का यह धार्मिक कर्त्तव्य होता है कि वो अपने पूर्वजों के निमित्त श्रद्धापूर्वक श्राद्धादि कर्म करे, जिससे उनके पूर्वज परलोक या जिस भी योनि में स्थित हों, वहां उन्हें सुख प्राप्त हो। देवकार्य की भांति पितृ कार्य को भी क्रिया शुद्धि और मानसिक शुद्धि से सम्पन्न करना चाहिये।

भाद्रपद शुक्ल पूर्णिमा से पितरों का दिन प्रारम्भ हो जाता है, जो अमावस्या तक रहता है। इसके अतिरिक्त शक्तिनुसार प्रत्येक अमावस्या को भी अपने पितरों के निमित्त दान, जप या यज्ञादि करने से मनुष्य का सर्व प्रकार से कल्याण होता है। मनुष्यों का कृष्णपक्ष पितरों का दिन और शुक्लपक्ष पितरों की रात्रि कही गयी है। मनुस्मृति में कहा गया है– मनुष्यों के एक माह के बराबर पितरों का एक दिनरात (अहोरात्र) होता है। इसलिये आश्विनमास के कृष्णपक्ष को पितृपक्ष कहा गया है। जिसमें श्राद्धादि कर्म करने से पितरजन संतुष्ट होकर अपने कुल को आशीर्वाद देते हैं।

श्राद्ध अपने अनुष्ठाता की आयु व कीर्ति को बढ़ाता है, पुत्र प्रदानकर कुल–परम्परा को अक्षुण्ण रखता है, धन–धान्य की वृद्धि करता है, शरीर में बल–वीर्य की वृद्धि करता है और यश का विस्तार करते हुए सभी प्रकार से सुख प्रदान करता है। माता–पिता की जीवित अवस्था में उनका अनुसरण करना, मृत्यु के अनन्तर श्राद्धकाल में ब्राह्मणों को उत्तम भोजन कराना तथा गया आदि में पिण्डदान कराना– ये तीन मुख्य कर्त्तव्य, पुत्र के अपने माता–पिता के लिये हैं, जिसका पालन करने से मनुष्य पितृऋण से मुक्त होता है।

जिस प्रकार जीवितावस्था में जीव की खाद्य आदि पदार्थों से तृप्ति होती है, उसी प्रकार मृत्यु के उपरान्त उस आत्मा की तृप्ति श्राद्धादि के द्वारा पिण्डदान, हवि, तर्पण, स्तुति आदि के द्वारा होती है। जिस प्रकार संकल्पपूर्वक मंत्रोपासना और हवन आदि के माध्यम से देवता संतुष्ट होते हैं, उसी प्रकार अपने एवं पितरजनों के नाम एवं गोत्र के द्वारा संकल्पपूर्वक हवि, पिण्डदान या सामग्री अर्पित करने से पितरजन संतुष्ट होते हैं। यदि पितर देवयोनि को प्राप्त हों तो दिया हुआ अन्न या होम उन्हें वहां अमृत के रूप में प्राप्त हो जाता है। मनुष्य योनि में हो तो अन्न–धन के रूप में तथा पशु–पक्षियों की योनि में हो तो भोजन के रूप में मिल जाता है। नाम, गोत्र, श्रद्धा एवं उचित संकल्पपूर्वक दिये हुए पदार्थों को भक्तिपूर्वक उच्चारित मंत्र उनके

पास पहुंचा देता है। यमदूत जब मनुष्य को अपने साथ यमलोक लेकर जाते हैं तो वह बारह दिनों तक अपने घर की ओर देखता रहता है। उस समय पृथ्वी पर उसके निमित्त जो जल और पिण्ड दिये जाते हैं, उन्हीं का वह उपभोग करता है।

श्राद्ध न करने से मृत जीव की आत्मा को बहुत कष्ट मिलता है। जिससे उस मृत जीव की आत्मा विवश होकर श्राद्ध न करने वाले अपने सगे-सम्बन्धियों का रक्त चूसने लगती है और साथ ही साथ वह कुल शाप का भागी भी बनता है। इसके कुप्रभाव से उस अभिशप्त परिवार को जीवन भर कष्टमय जीवन व्यतीत करना पड़ता है। उस परिवार में कोई पुत्र उत्पन्न नहीं होता है, कोई नीरोगी नहीं रहता, धार्मिक एवं मांगलिक कार्यों में विघ्न उत्पन्न होते हैं और मृत्यु उपरान्त नरक में जाना पड़ता है। इसे ही पितृदोष कहा जाता है। उपनिषद् में कहा गया है- देवता तथा पितरों के कार्यों में मनुष्य को कभी प्रमाद नहीं करना चाहिये।

ब्राह्मण भोजन से श्राद्ध की पूर्ति- सामान्यतः श्राद्धकर्म की दो प्रक्रिया हैं- 1- पिण्डदान 2- ब्राह्मण भोजन। मृत्यु के पश्चात् जो लोग देवलोक या पितृलोक में पंहुचते हैं, वे मंत्रों के द्वारा आवाहन करने पर उन-उन लोकों से तत्काल श्राद्धस्थान पर आ

जाते हैं और निमन्त्रित ब्राह्मणों के माध्यम से भोजन ग्रहण करते हैं। सूक्ष्मग्राही होने से भोजन के सूक्ष्म कणों के आघ्राण से उनकी तृप्ति हो जाती है। मनुस्मृति में कहा गया है- श्राद्ध के निमन्त्रित ब्राह्मणों में पितर गुप्तरूप से निवास करते हैं। प्राणवायु की भांति उनके चलते समय चलते हैं और बैठते समय बैठ जाते हैं। श्राद्धकाल में निमंत्रित ब्राह्मणों के साथ ही प्राणरूप में या वायुरूप में पितर आते हैं और ब्राह्मणों के साथ बैठकर भोजन करते हैं। तप, धर्म, दया, दान, सत्य, वेदज्ञान, सदाचार का पालन करने वाले एवं गायत्री मंत्र का जप करने वाले श्रोत्रिय ब्राह्मण को ही श्राद्ध हेतु निमंत्रण देना चाहिये। सुपात्र ब्राह्मण न प्राप्त हो तो गाय माता को ही संतुष्ट करने का शास्त्रों में विधान है। श्राद्ध में ब्राह्मणों को बैठाकर पैर धोना चाहिये। खड़े होकर पैर धोने पर पितर निराश होकर चले जाते हैं। यदि ब्राह्मण भोजन कराना सम्भव न हो तो सूखा अन्न, मेवा, घृत, चीनी, तिल और नमक आदि वस्तुओं को संकल्पपूर्वक किसी ब्राह्मण को दे देना चाहिये। पितरकार्य में बायां घुटना तथा देवकार्य में दायां घुटना जमीन पर लगाना चाहिये। पितरों का आवाहन आसनों पर तिल छोड़कर तथा देवताओं का आवाहन आसनों पर जौ छोड़कर करना चाहिये।

वास्तव में जो असहाय निर्धन अन्न-धन से भूखे हों उन्हीं को तृप्त करने से पितरदेवता एवं ईश्वर प्रसन्न होते हैं। जिनके पास अन्न-धन की कोई कमी न हो उनको अन्न आदि का दान करने से कोई विशेष लाभ नहीं होता है। अतः परिस्थिति, देश, काल, पात्र का भली-भांति विचार कर लेना चाहिये।

श्राद्ध के भेद- मत्स्यपुराण में तीन और यमस्मृति में पांच प्रकार के भेद बताये गये हैं- नित्य, नैमित्तिक, काम्य, वृद्धि और पार्वण। प्रतिदिन पितरों के निमित्त किये जाने वाले कर्म को नित्यश्राद्ध कहते हैं। इसमें विश्वेदेव नहीं होते तथा अशक्तावस्था होने पर केवल जल प्रदान करने से भी इस श्राद्ध की पूर्ति हो जाती है तथा एकोद्दिष्ट श्राद्ध को नैमित्तिक श्राद्ध कहते हैं। एकोद्दिष्ट का तात्पर्य है कि केवल मृत व्यक्ति के निमित्त एक पिण्ड का दान तथा कम से कम एक और अधिक से अधिक तीन ब्राह्मणों को भोजन कराना, इसमें भी विश्वेदेव नहीं होते। किसी कामना की पूर्ति के लिये किये जाने वाले श्राद्ध को काम्यश्राद्ध कहते हैं। वृद्धिकाल में पुत्रजन्म तथा विवाहादि मांगलिक कार्य में जो श्राद्ध किया जाता है, उसे वृद्धिश्राद्ध या नान्दीश्राद्ध कहते हैं। पितृपक्ष, अमावस्या अथवा पर्व की तिथि

पर जो सदैव विश्वेदेव सहित श्राद्ध किया जाता है, उसे पार्वण श्राद्ध कहते हैं।

कुछ लोगों में यह भ्रान्ति देखी गयी है कि गया श्राद्ध के बाद वार्षिक श्राद्ध आदि करने की आवश्यकता नहीं होती है, परंतु यह विचार पूर्णरूप से गल्त है। गया श्राद्ध करने के बाद भी पितरों की प्रसन्नता हेतु पुनः गया जाकर श्राद्ध सम्पन्न किया जा सकता है। गया श्राद्ध करने के बाद भी निवास स्थान में वार्षिक क्षयाह श्राद्ध तथा पितरपक्ष के सभी श्राद्ध कर्म करने चाहिये। इसके अतिरिक्त जिन पर पितरदोष आदि न भी हो उन्हें भी अपने पितरजनों की प्रसन्नता के लिये प्रत्येक वर्ष श्राद्धकर्म करना चाहिये।

आसन- रेशमी, ऊनी कम्बल- सफेद, कुशासन।

पात्र- सोने, चांदी, कांसे और तांबे, मिट्टी के पात्र पूर्व-पूर्व उत्तमोत्तम हैं। श्राद्धकाल में लोहे के पात्रों का प्रयोग कदापि न करें।

समय- दिन का आठवां मुहूर्त (दिन में 11 बजकर 36 मिनट से 12 बजकर 24 मिनट तक का समय) श्राद्ध कर्म के लिये मुख्य रूप से प्रशस्त है। इसे ही कुतप वेला कहते हैं। फिर भी

जिस समय उत्तम ब्राह्मण मिल जाये, उसी समय श्राद्ध करना चाहिये।

श्राद्धकाल में निषिद्ध- दातुन, पान, तैलमर्दन, उपवास, स्त्रीसम्भोग, शराब, मांस, औषध अगर सम्भव हो तो न ले, दूसरों का भोजन न करे।

श्राद्धकाल में ग्राह्य पुष्प- श्राद्धकाल में सफेद पुष्प ग्राह्य हैं। सफेद में सुगन्धित पुष्प की विशेष महिमा है। मालती, जूही, चम्पा, तुलसी, कमल एवं भृंगराज आदि पुष्प प्रशस्त हैं। लाल तथा काले रंग के पुष्प निषिध हैं।

श्राद्धकाल में प्रशस्त गंध- श्रीखण्ड, सफेद चन्दन, खस, कर्पूर की गंध ही इस कर्म में प्रशस्त है। कस्तूरी, रक्तचन्दन, गोरोचन आदि निषिद्ध है।

श्राद्ध में निषिद्ध अन्न- बासी एवं दुर्गन्धित भोजन, बैंगन, राजमाष, मसूर, अरहर, गाजर, कुम्हड़ा, गोल लौकी, शलजम, हींग, प्याज, लहुसन, काला नमक, काला जीरा, सिंघाड़ा, जामुन, कुलथी, कैथ, महुआ, अलसी, चना- ये सब निषिद्ध हैं।

श्राद्ध में प्रशस्त अन्न- गौदुग्ध, दही, खीर, घृत, जौ, धान, तिल, गेहूं, मूंग, सरसों का तेल, तिल का तेल, आम, बेल,

अनार, बिजौरा, पुराना आवंला, नारियल, नारंगी, खजूर, अंगूर, बेर, इन्द्रजौ आदि को श्राद्धकर्म में यत्नपूर्वक लेना चाहिये।

श्राद्ध स्थान- गया, पुष्कर, हरिद्वार, बद्रीनाथ, कुरुक्षेत्र आदि तीर्थों में श्राद्धकर्म की विशेष महिमा कही गयी है। इसके अतिरिक्त अपने घर, गोशाला, देवालय, गंगा, यमुना, नर्मदा आदि पवित्र नदियों के तट पर श्राद्ध करने का विशेष महत्त्व है। दक्षिण दिशा की ओर ढालवाली श्राद्धभूमि श्रेष्ठ मानी गयी है।

श्राद्धकाल मुख्य कर्त्तव्य- जो अपनी अंगुली में चांदी की अंगुठी धारण करके पितरों को तर्पण करता है, उसका सब तर्पण लाख गुणा अधिक और सोने की अंगुठी धारण करके तर्पण करने से करोड़ गुणा अधिक फल मिलता है। पद्‌मपुराण

जो ब्राह्मणों के हाथ में नमक या व्यंजन परोसता है अथवा लोहे के पात्र से परोसता है, उस भोजन को राक्षस खाते हैं, पितर ग्रहण नहीं करते। कूर्मपुराण

एक हाथ से लाया गया जो अन्नपात्र ब्राह्मणों के आगे रखा जाता है, उस अन्न को राक्षस छीन लेते हैं। मनुस्मृति

जो मनुष्य श्राद्ध के समय ब्राह्मणों को मिट्‌टी के पात्र में भोजन कराता है, वह मनुष्य तथा ब्राह्मण दोनों घोर नरक में जाते हैं। अत्रिसंहिता

स्त्री श्राद्ध के उच्छिष्ट पात्रों को न उठाये। ज्ञानहीन तथा व्रतरहित पुरुष भी उन्हें न उठाये। स्वयं पुत्र ही आकर पिता के श्राद्ध में उच्छिष्ट पात्रों को उठाये। स्कन्दपुराण

श्राद्ध के पिण्डों को गौ, ब्राह्मण या बकरी को खिला दे अथवा अग्नि या पानी में छोड़ दे। मनुस्मृति

यदि श्राद्धकर्ता की पत्नी को पुत्र की कामना हो तो मध्यम पिण्ड (पितामह को अर्पित पिण्ड) को खा ले और पितरों से पुत्र प्राप्ति की प्रार्थना करे- 'आधत्त पितरों गर्भं कुमारं पुष्करस्रजम।' अर्थात्- पितरों! आपलोग मेरे गर्भ में कमलों की माला से अलंकृत एक सुन्दर पुत्र की स्थापना करें। महाभारत

जो व्यक्ति अग्नि, विष आदि के द्वारा आत्महत्या करता है, उसके निमित्त अशौच तथा श्राद्ध तर्पण करने का विधान नहीं है। यदि श्राद्ध तर्पण किया भी जाये तो उसे फल नहीं मिलता। मनुस्मृति

अमावस्या को पितृश्राद्ध के अवसर पर यदि मंथन- दही बिलौना किया जाये तो उससे होने वाला मट्ठा मदिरा के समान तथा घी गोमांस के समान माना गया है। व्याघ्रपादस्मृति

श्राद्ध और हवन के समय तो एक हाथ से पिण्ड एवं आहुति दे, पर तर्पण में दोनों हाथों से जल देना चाहिये। लघुस्मृति

पूर्णिमा और चतुर्दशी को श्राद्ध नहीं करना चाहिये। क्योंकि पूर्णिमा कृष्णपक्ष में न होने से उसमें महालय की प्राप्ति नहीं

होती और चतुर्दशी में केवल शस्त्र से नष्ट हुए को छोड़कर श्राद्ध करने वाले के घर में नवयुवकों की मृत्यु तथा श्राद्धकर्ता स्वयं युद्ध का भागी होता है। इन दोनों तिथियों का श्राद्ध द्वादशी या अमावस्या को करना चाहिये। महाभारत

दूसरे की भूमि पर श्राद्ध नहीं करना चाहिये। जंगल, पर्वत, पुण्यतीर्थ और देववमन्दिर- ये दूसरों की भूमि में नहीं आते- क्योंकि इन पर किसी का स्वामित्व नहीं होता। कूर्मपुराण

मनुष्य देवकार्य में ब्राह्मणों की परीक्षा न करे, पर पितृकार्य में तो प्रत्यनपूर्वक ब्राह्मण की परीक्षा करे। मनुस्मृति

रात्रि में श्राद्ध नहीं करना चाहिये, उसे राक्षसी कहा गया है। दोनों संध्याओं में तथा पूर्वाह्णकाल में भी श्राद्ध नहीं करना चाहिये। मनुस्मृति

श्राद्धभूमि में सर्वत्र तिलों और पुष्पों को बिखेर देना चाहिये। तिलों के द्वारा असुरों से आक्रान्त भूमि शुद्ध हो जाती है। कूर्मपुराण

जिस श्राद्ध में तिल की मात्रा अधिक होती है, वह श्राद्ध अक्षय होता है। महाभारत

भोग की इच्छा रखने वाला पुरुष पिण्ड को सदा अग्नि में ही डाले। सन्तान की प्राप्ति के लिये मध्यम पिण्ड मंत्रोच्चारणपूर्वक पत्नी को दे दे। उत्तम कान्ति चाहे तो पिण्ड को गौओं को,

प्रज्ञा-यश और कीर्ति के लिये जल में, दीर्घायु हेतु कौओं को, कार्तिकेयलोक में जाने के लिये मुर्गे को खिला दे अथवा दक्षिण दिशा की ओर मुख करके सब पिण्ड आकाश में फेंक दे, क्योंकि आकाश और दक्षिण दिशा पितरों के स्थान हैं। स्कन्दपुराण

जो व्यक्ति अग्नि, विष आदि के द्वारा आत्महत्या करता है, उसके निमित्त अशौच तथा श्राद्ध तर्पण करने का विधान नहीं है। यदि श्राद्ध तर्पण किया भी जाये तो उसे फल नहीं मिलता। मनुस्मृति

स्त्री श्राद्ध के उच्छिष्ट पात्रों को न उठाये। ज्ञानहीन तथा व्रतरहित पुरुष भी उन्हें न उठाये। स्वयं पुत्र ही आकर पिता के श्राद्ध में उच्छिष्ट पात्रों को उठाये। स्कन्दपुराण

दस महादान- गाय, भूमि, तिल, सोना, घी, वस्त्र, धान्य, गुड़, चांदी और नमक- इन दस वस्तुओं का दान दस महादान कहलाता है। यह दान पितरों के निमित्त किया जाता है। मरणासन्न अवस्था को प्राप्त अपने पिता आदि के निमित्त पुत्र यदि शास्त्रोक्त दानों को देता है तो वह दान गयाश्राद्ध तथा सैकड़ों अवश्मेध यज्ञों से भी विशिष्ट फल देने वाला होता है- निर्णयसिंधु। जो अपने पितादि के निमित्त मरणासन्नावस्था तथा मृत्यु के उपरान्त दानादि कर्म नहीं करता, तो उसके पितर अत्यन्त कष्टपूर्वक यमलोक की यात्रा करते हैं।

कुश, काले तिल एवं तुलसी– काले तिल और कुश दोनों भगवान् नारायण के शरीर से प्रादुर्भूत हुए हैं। अतः ये श्राद्ध की रक्षा करने में सर्वसमर्थ हैं। तुलसी की गंध से पितरजन प्रसन्न होकर गरुड़ पर सवार होकर विष्णुलोक को चले जाते हैं। तुलसी से पिण्डार्चन किये जाने पर पितरजन प्रलयपर्यन्त संतुष्ट रहते हैं।

धनाभाव में भी श्राद्ध कर्म करना– श्राद्धपक्ष को धन और शक्ति के अनुसार पूर्ण करना चाहिये। सम्पन्नता होते हुए कंजूसी कदापि न करे। इसमें ब्राह्मणादि को अन्न–धन वस्त्रादि से एवं गौ, श्वान आदि को भोजन आदि से संतुष्ट किया जाता है। यदि वास्तव में अन्न–वस्त्र के लिये पैसे न हो तो उस परिस्थिति में शाक से श्राद्ध कर देना चाहिये। यदि किसी कारण शाक खरीदने के लिये भी पैसे न हो तो घास को काटकर गाय को खिला देना चाहिये। पद्मपुराण ने यही व्यवस्था की है। अगर वास्तव में ऐसी परिस्थिति उत्पन्न हो जाये कि घासादि की भी व्यवस्था न हो पाये तो श्राद्धकर्ता एकान्त एवं पवित्र स्थान में जाकर अपनी दोनों भुजाओं को उठाकर निम्न श्लोकों से पितरों की स्तुति करें–

न मेऽस्ति वित्तं न धनं च नान्यच्छ्राद्धोपयोग्यं स्वपितृन्नतोऽस्मि।
तृप्यन्तु भक्त्या पितरो मयैतौ कृतौ भुजौ वर्त्मनि मारुतस्य।।

भावार्थ- "अर्थात् हे मेरे पितरगण! मेरे पास श्राद्ध के उपयुक्त न तो धन है, न धान्य आदि। हां, मेरे पास आपके लिये श्रद्धा और भक्ति है। मैं इन्हीं के द्वारा आपको तृप्त करना चाहता हूं। आप तृप्त हो जायें। मैंने शास्त्र की आज्ञा के अनुरूप दोनों भुजाओं को आकाश में उठा रखा है।"

इसके अतिरिक्त पात्र में शुद्ध जल (हो सके तो कच्चा दूध, कृष्ण तिल एवं गंगाजल डालकर) भरकर दक्षिण दिशा की ओर मुख करके पितृगायत्री से तर्पण भी कर सकते हैं- "ॐ देवताभ्यः पितृभ्यश्च महायोगिभ्य एव च। नमः स्वाहायै स्वधायै नित्यमेव नमो नमः।" चूंकि चांदी शिवजी के नेत्रों से उद्भूत हुई है, इसलिये यह पितरों को परम प्रिय है। पितरों के निमित्त चांदी से बने या चांदी से मढ़े हुए पात्रों द्वारा श्रद्धापूर्वक जलमात्र भी प्रदान किया जाये तो वह अक्षय फल प्रदान करता है। अन्त में विष्णुसहस्रनाम का पाठ कर उन्हें पितरों की शान्ति के लिये प्रार्थना करने से मनुष्य का सर्व प्रकार से कल्याण होता है। विष्णुजी पितरों के प्रधान देवता कहे गये हैं।

जो पुरुष देश, काल, शरीर और वैभव के अनुसार यथायोग्य क्रिया आदि का अनुष्ठान करता है, वह मनुष्य ब्रह्मा, इन्द्र, रुद्र, अश्विनीकुमार, सूर्य, अग्नि, वायु, विश्वेदेव, पितरगण, मनुष्यगण, पशुगण, भूतगण और सर्पगण को भी संतुष्ट करता हुआ सम्पूर्ण जगत् को संतुष्ट कर लेता है- ब्रह्मपुराण।

जो लोग देवता, ब्राह्मण, अग्नि और पितरगण की पूजा करते हैं, वे सबकी अन्तरात्मा में रहने वाले विष्णु की ही पूजा करते हैं- यमस्मृति।

देवकार्य की अपेक्षा पितृकार्य की विशेषता मानी गयी है। अतः देवकार्य से पूर्व पितरों को तृप्त करना चाहिये- वायु, ब्रह्मवैवर्तपुराण।

श्राद्ध से केवल अपनी तथा अपने पितरों की ही संतृप्ति नहीं होती, अपितु जो व्यक्ति विधिपूर्वक अपने धन के अनुरूप श्राद्ध करता है, वह ब्रह्मा से लेकर घास तक समस्त प्राणियों को संतृप्त कर देता है- ब्रह्मपुराण।

जो पुरुष वेद, धर्मशास्त्र, ब्राह्मण, देवता और पितरधर्मों में मिथ्याबुद्धि रखता है, वह अक्षय नरक प्राप्त करता है तथा धन पास रहते हुए भी जो लोभवश दान और भोग से रहित है तथा

पीछे से यह कह देता है कि मेरे पास है ही नहीं, वह अक्षय नरक प्राप्त करता है- महाभारत।

श्राद्धकर्म के अधिकारी- पिता की अन्त्येष्टि से लेकर श्राद्ध कर्म करने का अधिकार मुख्य रूप से ज्येष्ठ पुत्र को ही है। विकट परिस्थिति में बड़े भाई न होने पर या उसकी आज्ञा से छोटा भाई भी कर सकता है। सभी भाईयों का संयुक्त परिवार हो तो वार्षिक श्राद्ध भी ज्येष्ठ पुत्र के द्वारा एक ही स्थान पर सम्पन्न हो सकता है। यदि पुत्र अलग-अलग हो तो उन सभी को अलग-अलग श्राद्धकर्म करना चाहिये। स्मृतिसंग्रह तथा कल्पकल्पता के अनुसार श्राद्ध के अधिकारी पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र, पुत्री का पुत्र, पत्नी, भाई, भतीजा, पिता, माता, पुत्रवधू, बहन, भान्जा, सपिण्ड तथा सोदक कहे गये हैं। इनमें पूर्व-पूर्व के न रहने पर क्रमशः बाद के लोगों का श्राद्ध करने का अधिकार है।

नारायणबलि- शास्त्रों में जिनकी मृत्यु अग्नि में जलने, पानी में डूबने, अभिचारकर्म, ब्राह्मण के द्वारा, सिंह-व्याघ्रादि हिंसक पशु के द्वारा, सर्पादि के द्वारा, ब्रह्मदण्ड के द्वारा, विद्युत के द्वारा, सांड आदि सींग वाले जानवर के द्वारा होती है, उन्हें दुर्मरण की संज्ञा दी गयी है। मुख्य रूप से इस प्रकार से मरने वालों की एकादशाह के दिन श्राद्ध के पूर्व नारायणबलि करनी आवश्यक है,

क्योंकि इस प्रायश्चित के बिना श्राद्ध आदि में मृत जीव के निमित्त दिये गये पदार्थ उस जीव को प्राप्त नहीं होते, वे अन्तरिक्ष में ही स्थित रह जाते हैं। जिससे उनकी आत्मा अतृप्त रहती है। जिससे पितरदोष उत्पन्न होता है।

शास्त्रों में दुर्मरण का मुख्य कारण आत्महत्या माना गया है। स्वेच्छापूर्वक जो व्यक्ति अग्नि, शस्त्र एवं फांसी के द्वारा अविधिपूर्वक आत्महत्या करते हैं, वे आत्महत्यारे कहे गये हैं। शास्त्र के अनुसार उनकी सद्गति सम्भव नहीं है। इसलिये शास्त्र के अनुसार एक वर्ष तक उनके निमित्त श्राद्ध आदि कोई कर्म नहीं करना चाहिये। वर्ष पूरा होने पर नारायणबलि करके श्राद्ध आदि कर्म करना चाहिये। श्राद्धचिंतामणि में कहा गया है– 'आत्महत्या के निमित्त वर्ष के भीतर यदि कोई श्राद्धादि कर्म करता है, तो कर्ता को प्रायश्चितरूप में चान्द्रायण व्रत करने की विधि है। नारायण बलि एक प्रमुख पितृकर्म है, जिसका आयोजन पितरों की सद्गति और पितृदोष से निवारण हेतु किया जाता है। पांच या एक कर्मकाण्डी ब्राह्मण के द्वारा इसका आयोजन किया जाता है। इसमें मुख्य रूप से ब्रह्मसूक्त, विष्णुसूक्त, रुद्रसूक्त, यमसूक्त और प्रेतसूक्त से पांच कलशों पर

इन्हीं पंचदेवताओं का आवाहनादि कर पूजन, तर्पण व होमादि किया जाता है।

अभिचारिक कर्म के द्वारा मृत्यु को प्राप्त एवं आत्महत्या करने वाले जीव की आत्मा कई परिवारों में अशान्त अनुभव की गयी है। अन्त्येष्टि संस्कार में कोई बड़ी त्रुटि होने से भी पितरदोष बन जाता है। अतः इन सबकी शान्ति के लिये प्रत्येक अमावस्या को एवं पितरपक्ष में पितरों के निमित्त विशेष अनुष्ठानादि की आवश्यकता होती है।

स्वप्न में यदि बार-बार सर्प दिखाई दें, तो उसे अपने परिवार की कोई अतृप्त आत्मा समझें अर्थात् पितरदोष का होना। ऐसी परिस्थिति में विष्णुसहस्रनाम, शिवसहस्रनाम या नागसहस्रनाम की 108 आवृत्ति करनी या करवानी चाहिये। नारायण बलि या नागबलि कर्म का आयोजन करे। पितृगायत्री के या रुद्रगायत्री के सवालाख जप करवाने चाहिये। पितृसूक्त का पाठ करने से भी पितरजन शान्त होते हैं।

देवोपासना की भांति पितरों को संतुष्ट करने के कई प्रकार बताये गये हैं। शक्ति, वैभव, समय और परिस्थिति के अनुसार पितृकर्म का आयोजन करना चाहिये। जैसे- पितृपक्ष में नित्य निर्धन ब्राह्मण को भोजन कराकर वस्त्र एवं दक्षिणा प्रदान

करना। ब्राह्मण आदि का प्रबन्ध न हो पाये तो निर्धन असहाय लोगों की सेवा भी की जा सकती है। विष्णु जी के मन्दिर में खीर–मिष्ठान–फल आदि को पितरों के निमित्त अर्पित करना। विष्णुसहस्रनाम का पाठ कर उनसे पितरों को सद्गति के लिये प्रार्थना करना। देवालय या निवासस्थान में पितरों के निमित्त पिण्डदान करना, पितृगायत्री का जप, तर्पण या होम करना। पितृसूक्त का पाठ करना। गौ, श्वान, काक आदि को भोजन प्रदान करना। पितरों के निमित्त संकल्प लेकर विष्णुपुराण या रामायण का पितरपक्ष में सम्पूर्ण पाठ करना। इसके अतिरिक्त जो धार्मिक कर्म मनुष्य के माता–पिता अपने जीवनकाल में करते रहे हों, उनकी मृत्यु के पश्चात् उस कर्म को अपने जीते जी करते रहना चाहिये। पितरजनों को दूध से बनी सामग्रियां अत्यन्त प्रिय होती हैं। अतः खीर, घृत, पनीर एवं दूध आदि का विशेष रूप से उपयोग करना चाहिये।

पितृसूक्तम्– इस पितृसूक्त के ऋषि शंख यामायन, देवता पितर तथा छन्द त्रिष्टुप् और जगती हैं।(ऋग्वेद)

उदीरतामवर उत् परास उन्मध्यमाः पितरः सोम्यासः। असुं य ईयुरवृका ऋतज्ञास्ते नोऽवन्तु पितरो हवेषु।।1।

इदं पितृभ्यो नमो अस्त्वद्य ये पूर्वासो य उपरास ईयुः। ये पार्थिवे रजस्या निषत्ता ये वा नूनं सुवृजनासु विक्षु।2।

आहं पितृन् त्सुविदत्राँ अवित्सि नपातं च विक्रमणं च विष्णोः। बर्हिषदो ये स्वधया सुतस्य भजन्त पित्वस्त इहागमिष्ठाः।3।

बर्हिषदः पितर ऊत्यार्वागिमा वो हव्या चकृमा जुषध्वम्। त आ गतावसा शंतमेनाऽथा नः शं योररपो दधात।4।

उपहूताः पितरः सोम्यासो बर्हिष्येषु निधिषु प्रियेषु। त आ गमन्तु त इह श्रुवन्त्वधि ब्रुवन्तु तेऽवन्त्वस्मान्।5।

आच्या जानु दक्षिणतो निषद्येमं यज्ञमभि गृणीत विश्वे। मा हिंसिष्ट पितरः केन चिन्नो यद्व आगः पुरुषता कराम।6।

आसीनासो अरुणीनामुपस्थे रयिं धत्त दाशुषे मर्त्याय। पुत्रेभ्यः पितरस्तस्य वस्वः प्रयच्छत त इहोर्जं दधात।7।

ये नः पूर्वे पितरः सोम्यासोऽनूहिरे सोमपीथं वसिष्ठाः। तेभिर्यमः संरराणो हवींष्युशन्नुशद्भिः प्रतिकाममत्तु।8।

ये तातृषुर्देवत्रा जेहमाना होत्राविदः स्तोमतष्टासो अर्कैः। आग्ने याहि सुविदत्रेभिरर्वाङ् सत्यैः कव्यैः पितृभिर्घर्मसद्भिः।9।

ये सत्यासो हविरदो हविष्पा इन्द्रेण देवैः सरथं दधानाः। आग्ने याहि सहस्रं देववन्दैः परैः पूर्वैः पितृभिर्घर्मसभ्दिः।10।

अग्निष्वात्ताः पितर एह गच्छत सदः सदः सदत सुप्रणीतयः। अत्ता हवींषी प्रयतानि बर्हिष्यथा रयिं सर्ववीरं दधातन।11।

त्वमग्न ईळितो जातवेदोऽवाड्ढव्यानि सुरभीणि कृत्वी। प्रादाः पितृभ्यः स्वधया ते अक्षन्नद्धि त्वं देव प्रयता हवींषि।12।

ये चेह पितरो ये च नेह याँश्च विद्म याँ उ च न प्रविद्म्। त्वं वेत्थ यति ते जातवेदः स्वधाभिर्यज्ञं सुकृतं जुषस्व।13।

ये अग्निदग्धा ये अनग्निदग्धा मध्ये दिवः स्वधया मादयन्ते। तेभिः स्वराळसुनीतिमेतां यथावशं तन्वं कल्पयस्व।14।

पितृयज्ञ एवं ब्राह्मण भोजन के समय विशेष रूप से इस पितृसूक्त का पाठ करना चाहिये। इस सूक्त में पितरों का आवाह्न कर उनसे सुख-समृद्धि के लिये प्रार्थना की गयी है।

Books Written by Gurudev Shri Raj Verma ji

- Divya Mantra Sadhana Evam Siddhi

- Shri Baglamukhi Divya Sadhana